राजस्थान उच्च न्यायालय,जोधपुर

डी. बी. विशेष अपील रिट याचिका सं. 38/2023

1. भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय नोएडा, थ्रू डी. जी. एम. (एच. आर. एस.), उत्तर, ए-5 और 6, सेक्टर 1, नोएडा (यू. पी.)
2. उप महाप्रबंधक (एच. आर. सेवाएं), उत्तर, ए-5 और 6, सेक्टर 1, नोएडा (यू. पी.)..... अपीलकर्ता

बनाम

ज्ञान चंद पुत्र श्री भागीरथजी, लगभग 42 वर्ष की आयु, जाति खटिक, कलाल कॉलोनी निवासी, गली संख्या 10, नागौरी गेट के अंदर, जोधपुर.....प्रतिवादी

अपीलार्थी(ओं)के लिएः- श्री निशांत बोरा।

उत्तरदाताओं के लिएः- डॉ. हरीश पुरोहित।

माननीय न्यायाधीश डॉ. पुष्पेंद्र सिंह भाटी

माननीय न्यायाधीश श्री राजेंद्र प्रकाश सोनी

रिपोर्ट करने योग्य निर्णय

निर्णय आरक्षित 03/01/2024 को

उच्चारित किया गया 23/01/2024 को

डॉ. पुष्पेंद्र सिंह भाटी, जेः-

1. इस विशेष अपील को राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1952 के नियम 134 के तहत एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 180/2004 (ज्ञान चंद बनाम भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य) में इस माननीय न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 05.12.2022 के आदेश के खिलाफ दायर किया गया है। जिसके तहत प्रत्यर्थी द्वारा दायर रिट याचिका (जिसे इसके बाद 'रिट याचिकाकर्ता' के रूप में संदर्भित किया गया है) का, मामले को अपीलार्थी-निगम को वापस भेजते हुए रिट याचिकाकर्ता पर लगाए गए बर्खास्तगी के दंड के पहलू पर पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ निपटारा किया गया था।

2. निवेदन किए गए तथ्यों के अनुसार, रिट याचिकाकर्ता को 12.01.1987 को अपीलकर्ता-निगम द्वारा एक चौकीदार (ग्रेड-II) के रूप में नियुक्त किया गया था, हालांकि, वर्ष 2002 में नियुक्ति के समय एक जाली स्थानांतरण प्रमाण पत्र जमा करने के आरोप के साथ एक आरोप पत्र दिया गया था; तदनुसार, रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ एक जांच की गई थी और 20.05.2003 की जांच रिपोर्ट के अनुसार, रिट याचिकाकर्ता को कदाचार का दोषी पाया गया था, और परिणामस्वरूप, 27.11.2003 के आदेश के अनुसार सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था।

2.1. इसके बाद, रिट याचिकाकर्ता ने इस माननीय न्यायालय के समक्ष उपरोक्त रिट याचिका को प्राथमिकता दी, जिसका निपटारा इस माननीय न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 05.12.2022 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से किया गया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। इस प्रकार, इससे व्यथित होने के कारण, अपीलार्थी-निगम ने वर्तमान विशेष अपील को प्राथमिकता दी है।

3. अपीलार्थी-निगम के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि यह कोई विवादित तथ्य नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता ने भर्ती प्रक्रिया के समय एक जाली दस्तावेज प्रदान किया था और उसी के आधार पर खुद को चौकीदार के पद के लिए आवश्यक शिक्षा योग्यता साबित किया था, जिसके कारण उन्हें अपीलार्थी-निगम में उक्त पद के लिए काम पर रखा गया था, जो विश्वासघात के अलावा और कुछ नहीं था।

3.1. यह आगे प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी-निगम को रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ सी. बी. आई. से एक स्व-प्रतिवाद पत्र प्राप्त हुआ था, और मामले की गहन जांच करने के बाद, रिट याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर देने और संबंधित गवाहों के बयान लेने के बाद, यह पाया गया कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया गया सातवीं कक्षा का स्थानांतरण प्रमाण पत्र एक जाली दस्तावेज था, और रिट याचिकाकर्ता की ओर से इस तरह के आचरण को एक गंभीर कदाचार माना गया था, जिसके बाद ही, रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ अपीलार्थी-निगम द्वारा सेवा से बर्खास्तगी का निर्णय लिया गया था।

3.2. यह भी प्रस्तुत किया गया था कि इस माननीय न्यायालय की विद्वान एकल पीठ ने भी जांच रिपोर्ट को बरकरार रखा था और कहा था कि जांच अधिकारी के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, और फिर भी मामले को एक बार फिर सजा के पहलू पर निर्णय लेने के लिए संबंधित प्राधिकारी को वापस भेजने के लिए आगे बढ़ा था, जो कानून की नजर में उचित नहीं था।

3.3. यह आगे प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त के अलावा, विवादित रिमांड आदेश भी इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम राजेंद्र डी. हरमलकर (2022 की सिविल अपील संख्या 2911, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 21.04.2022 को निर्णीत) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित पूर्ववर्ती कानून के विपरीत है।

3.4. विद्वान वकील ने उपायुक्त, केवीएस और अन्य बनाम जे. हुसैन (2013 की सिविल अपील संख्या 8948, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 04.10.2013 को निर्णीत) के मामले में दिए गए फैसले पर भी भरोसा किया है।

4. दूसरी ओर प्रत्यर्थी/रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अपीलार्थी-निगम की ओर से की गई दलीलों का विरोध किया।

4.1. यह प्रस्तुत किया गया था कि निगम के उप महाप्रबंधक ने केवल जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर 27.11.2023 दिनांकित बर्खास्तगी आदेश पारित किया था, जिसमें जांच अधिकारी स्वयं उस स्कूल के बारे में स्पष्ट नहीं थे, जहाँ से आवश्यक जानकारी मांगी जानी थी, इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रश्नगत निष्कर्ष पर उचित दिमाग लगाने के बाद पहुंचा गया था।

4.2. यह आगे प्रस्तुत किया गया कि रिट याचिकाकर्ता ने अपीलार्थी-निगम को लगभग 17 वर्षों की समर्पित सेवाएं प्रदान की थीं, जब तक कि उसे आरोप पत्र सौंपा गया था और यहां तक कि इस माननीय न्यायालय की विद्वान एकल पीठ ने भी आक्षेपित आदेश पारित करते समय इसे ध्यान में रखा था।

4.3. यह आगे प्रस्तुत किया गया कि विद्वान एकल पीठ ने रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ (1987) 4 एस. सी. सी. 611 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा और वुडुरी वेंकटेश बनाम मुख्य प्रबंधक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, (2017 की रिट याचिका संख्या 32889 और अन्य संबंधित मामलों) के मामले में माननीय तेलंगाना उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के आलोक में आनुपातिकता के सिद्धांत पर सही ढंग से भरोसा किया था।

5. पक्षकारों के लिए विद्वान वकील के साथ-साथ बार में उद्धृत निर्णयों के साथ मामले की समीक्षा की।

6. यह न्यायालय देखता है कि रिट याचिकाकर्ता को अपीलार्थी-निगम में एक चौकीदार के रूप में 12.01.1987 पर नियुक्त किया गया था और कुछ अन्य दस्तावेजों के साथ आवेदन पत्र जमा करने की आवश्यकता थी, जिनमें से एक अन्य दस्तावेजों के साथ स्थानांतरण प्रमाण पत्र था, हालांकि, भर्ती प्रक्रिया के दौरान रिट याचिकाकर्ता ने कक्षा VII के स्थानांतरण प्रमाणपत्र के रूप में एक जाली दस्तावेज प्रदान किया था, और बाद में, वर्ष 2002 में उस पर आरोप पत्र जारी किया गया था, और तदनुसार, रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच कार्यवाही की गई थी; एक पूछताछ रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसके अनुसरण में, रिट याचिकाकर्ता को दिनांक 27.11.2023 के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। रिट याचिकाकर्ता ने इस माननीय न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और हालांकि जांच रिपोर्ट को बरकरार रखा गया था, लेकिन मामले को उप महाप्रबंधक को सजा पर पुनर्विचार करने के लिए वापस भेज दिया गया था।

7. यह न्यायालय आगे देखता है कि एक अंतरिम आदेश दिनांक 01.06.2023 अपीलार्थी-निगम के पक्ष में काम कर रहा है; प्रासंगिक भाग जिसका पुनः प्रस्तुत किया गया हैः "5. स्वीकार । नोटिस जारी करें। चूंकि एकमात्र प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व डॉ. हरीश पुरोहित द्वारा किया जाता है, इसलिए नए सिरे से नोटिस जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

6. स्थगन याचिका पर सुना।

7. अपील के लंबित रहने के दौरान, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 05.12.2022 के आदेश के प्रभाव और संचालन पर रोक रहेगी।

8. स्टे एप्लीकेशन No.1426/2023 का निपटारा कर दिया गया है।

9. विवाद की प्रकृति को देखते हुए और जैसा कि यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है, अगस्त, 2023 के महीने में सुनवाई के लिए अपील को सूचीबद्ध करें।

10. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह अपीलार्थियों की ओर से पेश होने वाले वकील के बजाय वाद सूची में उत्तरदाताओं की ओर से पेश होने वाले वकील के रूप में डॉ. हरीश पुरोहित का नाम दर्शाए।

8. यह न्यायालय यह भी देखता है कि इस माननीय न्यायालय की विद्वत एकल पीठ ने विवादित आदेश पारित करते हुए, उचित विश्लेषण के बाद, जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को बरकरार रखा है। तैयार संदर्भ के लिए, विद्वान एकल पीठ द्वारा पारित विवादित आदेश के प्रासंगिक भागों को नीचे प्रस्तुत किया गया हैः- *"20.05.2003* दिनांकित जाँच रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जाँच अधिकारी एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि स्थानांतरण प्रमाणपत्र जाली था। उस समय स्कूल के हेडमास्टर को जांच अधिकारी के सामने भी पेश किया गया था और उन्होंने विशेष रूप से कहा था कि स्थानांतरण प्रमाण पत्र गलत है। उन्होंने यह भी कहा कि स्थानांतरण प्रमाण पत्र में उल्लिखित तिथि 01.07.1968 पर स्कूल के रिकॉर्ड में श्री ज्ञान चंद पुत्र श्री भागीरथ के नाम पर कोई प्रवेश पंजीकृत नहीं था। इसके अलावा, यह रिकॉर्ड पर भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को बचाव में साक्ष्य देने के लिए पर्याप्त अवसर दिए गए थे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। मान लीजिए, उन्हें गवाहों से जिरह करने का अवसर भी दिया गया था, जिसका भी उन्होंने लाभ नहीं उठाया। इस न्यायालय की राय में, वर्तमान मामले में पूरा विवाद याचिकाकर्ता के स्थानांतरण प्रमाण पत्र से संबंधित था, जिसका अर्थ है कि क्या याचिकाकर्ता स्थानांतरण प्रमाण पत्र में उल्लिखित योग्य था। यदि याचिकाकर्ता स्थानांतरण प्रमाणपत्र में उल्लिखित योग्यता रखता, तो वह इस उद्देश्य के लिए कुछ अन्य प्रासंगिक दस्तावेज प्रस्तुत कर सकता था, उदाहरण के लिए, उक्त तथ्य को साबित करने के लिए प्रासंगिक समय पर कोई भी मार्कलिस्ट या कोई अन्य प्रमाण पत्र। हालाँकि, उन्होंने ऐसा नहीं किया और न ही उन्होंने अपने दावे को साबित करने के लिए कोई गवाह पेश किया। इसलिए, जांच अधिकारी द्वारा किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे उचित संदेह से परे साक्ष्य पर आधारित हैं।

9. इस न्यायालय ने आगे कहा कि विद्वत एकल पीठ द्वारा की गई जांच रिपोर्ट के उचित विश्लेषण के अलावा, जैसा कि विवादित आदेश के पूर्व उद्धृत भाग में परिलक्षित होता है, इस न्यायालय ने जांच रिपोर्ट की सामग्री और निष्कर्षों की भी उचित सराहना की है और जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए उक्त निष्कर्षों में कोई कानूनी दुर्बलता नहीं पाई है, और केवल उसी हिसाब से, यह न्यायालय जांच रिपोर्ट को बरकरार रखने में विद्वत एकल पीठ के दृष्टिकोण से सहमत है।

10. यह न्यायालय आगे देखता है कि रिट याचिकाकर्ता को दिनांक 15.02.2002 दिनांकित आरोप पत्र जारी किया गया था जिसमें उसके खिलाफ लगाए गए आरोप क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले प्रमाणित स्थायी आदेशों के निर्देशों के साथ-साथ आवेदन पत्र में भी थे, जो यह निर्धारित करता है कि आवेदन पत्र जमा करने के समय रोजगार प्राप्त करने के लिए कोई भी गलत जानकारी प्रस्तुत की जाती है, तो आवेदक बिना किसी सूचना के तत्काल अयोग्यता/बर्खास्तगी के लिए उत्तरदायी होगा।

11. यह न्यायालय राजेंद्र डी. हरमलकर (उपर्युक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से अवगत है, जिसके प्रासंगिक भाग को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

"28. न्यायिक समीक्षा और अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप और आनुपातिकता की कसौटी पर, इस न्यायालय के कुछ निर्णयों को संदर्भित करने की आवश्यकता हैः i) ओम कुमार (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने वेडनसबरी सिद्धांतों और आनुपातिकता के सिद्धांत पर विचार करने के बाद, यह मत व्यक्त किया है और अभिनिर्धारित किया है कि अनुशासनात्मक मामलों में सजा की मात्रा का प्रश्न मुख्य रूप से अनुशासनात्मक प्राधिकरण के लिए आदेश देने के लिए है और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों या प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की अधिकारिता सीमित है और 'वेडनसबरी सिद्धांतों' के रूप में जाने जाने वाले एक या अन्य प्रसिद्ध सिद्धांतों की प्रयोज्यता तक सीमित है। वेड्सबरी मामले, [1948] 1 के. बी. 223 में, यह कहा गया था कि जब कोई क़ानून किसी प्रशासक को निर्णय लेने का

विवेकाधिकार देता है, तो न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित रहेगा। लॉर्ड ग्रीन ने आगे कहा कि हस्तक्षेप की अनुमति तब तक नहीं थी जब तक कि निम्नलिखित शर्तों में से एक या दूसरी को पूरा नहीं किया गया था, अर्थात्, आदेश कानून के विपरीत था, या प्रासंगिक कारकों पर विचार नहीं किया गया था, या अप्रासंगिक कारकों पर विचार किया गया था, या निर्णय ऐसा था जिसे कोई भी उचित व्यक्ति नहीं ले सकता था।

(ii) बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, (1995) 6 एस. सी. सी. 749 के मामले में, पैराग्राफ 18 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अवलोकन और अभिनिर्धारित कियाः "18. उपरोक्त कानूनी स्थिति की समीक्षा से यह स्थापित होगा कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण और अपील करने पर अपीलीय प्राधिकरण, तथ्य खोजने वाले अधिकारी होने के नाते, अनुशासन बनाए रखने की दृष्टि से साक्ष्य पर विचार करने की विशेष शक्ति रखते हैं। उन्हें दुराचार की गंभीरता या गंभीरता को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देने के विवेक के साथ निवेश किया जाता है। उच्च न्यायालय/न्यायाधिकरण, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए, आम तौर पर दंड पर अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और कुछ अन्य दंड नहीं लगा सकता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण या अपीलीय प्राधिकरण द्वारा लगाई गई सजा उच्च न्यायालय/न्यायाधिकरण की अंतरात्मा को झकझोर देती है, तो यह उचित रूप से राहत देगा, या तो अनुशासनात्मक/अपीलीय प्राधिकरण को लगाए गए दंड पर पुनर्विचार करने का निर्देश देगा, या मुकदमेबाजी को छोटा करने का निर्देश देगा, यह स्वयं, असाधारण और दुर्लभ मामलों में, इसके समर्थन में ठोस कारणों के साथ उचित सजा दे सकता है।

iii) लखनऊ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (अब इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक) बनाम राजेंद्र सिंह, (2013) 12 एस. सी. सी. 372 के मामले में, पैराग्राफ 19 में, इसे निम्नानुसार देखा और अभिनिर्धारित किया गया थाः ऊपर चर्चा किए गए सिद्धांतों का सारांश और सारांश इस प्रकार दिया जा सकता हैः जब किसी जांच में कदाचार के आरोप साबित हो जाते हैं तो किसी विशेष मामले में दी जाने वाली सजा की मात्रा अनिवार्य रूप से

विभागीय अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में होती है।

"19. ऊपर चर्चा किए गए सिद्धांतों का सारांश और सारांश इस प्रकार दिया जा सकता हैः जब किसी जांच में कदाचार के आरोप साबित हो जाते हैं तो किसी विशेष मामले में दी जाने वाली सजा की मात्रा अनिवार्य रूप से विभागीय अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में होती है।

19.2. अदालतें अनुशासनात्मक/विभागीय अधिकारियों के कार्य को ग्रहण नहीं कर सकती हैं और सजा की मात्रा और दिए जाने वाले दंड की प्रकृति का निर्णय नहीं कर सकती हैं, क्योंकि यह कार्य विशेष रूप से सक्षम प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में है।

19.3. अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड में हस्तक्षेप करने के लिए सीमित न्यायिक समीक्षा उपलब्ध है, केवल उन मामलों में जहां इस तरह का दंड अदालत की अंतरात्मा के लिए चौंकाने वाला पाया जाता है।

19.4. ऐसे मामले में भी जब सजा को अपराधी कर्मचारी के खिलाफ बनाए गए आरोपों की प्रकृति के लिए आश्चर्यजनक रूप से असमान के रूप में अलग रखा जाता है, तो कार्रवाई का उचित तरीका यह है कि मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकरण या अपीलीय प्राधिकरण को वापस भेज दिया जाए ताकि दंड का उचित आदेश पारित किया जा सके। अदालत अपने आप में यह आदेश नहीं दे सकती कि ऐसे मामले में जुर्माना क्या होना चाहिए।

19.5. ऊपर पैरा 19.4 में बताए गए सिद्धांत का एकमात्र अपवाद उन मामलों में होगा जहां सह-दंड को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कम सजा दी जाती है, तब भी जब कदाचार के आरोप समान थे या सह-दंड को अधिक गंभीर आरोपों के साथ लगाया गया था। यह समानता के सिद्धांत पर होगा जब यह पाया जाएगा कि संबंधित कर्मचारी और सह-प्रतिनिधि समान रूप से तैनात हैं। हालाँकि, दोनों के बीच एक पूर्ण समानता होनी चाहिए, न केवल आरोप की प्रकृति के संबंध में बल्कि बाद के आचरण के साथ-साथ दोनों मामलों में आरोप पत्र की सेवा के बाद भी। यदि सह अपराधी आरोपों को स्वीकार करता है, जो अयोग्य माफी के साथ पश्चाताप

का संकेत देता है, तो उसे कम सजा देना उचित होगा।

34. यहां तक कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय और आदेश से भी ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि उच्च न्यायालय द्वारा कोई विशिष्ट तर्क दिया गया था कि कैसे अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लगाई गई सजा को साबित किए गए कदाचार के लिए चौंकाने वाला अनुपातहीन कहा जा सकता है। कानून की तय स्थिति के अनुसार, जब तक यह नहीं पाया जाता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लगाई गई सजा आश्चर्यजनक रूप से असमान है और/या जांच करने में प्रक्रियात्मक अनियमितता है, तब तक उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लगाए गए सजा के आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा, जो कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण का विशेषाधिकार है जैसा कि ऊपर देखा गया है।

35. उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय और आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने पिछले वेतन और अन्य लाभों से इनकार कर दिया है और मूल रिट याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वकील द्वारा दी गई रियायत पर बहाली का आदेश दिया है। हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि 2006 से 2017 के बीच की अवधि के लिए यानी रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी रिलायंस इंडस्ट्रीज के पेट्रोलियम प्रभाग में काम कर रहा था। इसलिए, वह इस बात से अवगत था कि अन्यथा भी वह उपरोक्त अवधि के लिए पिछले वेतन का हकदार नहीं है। इसलिए, मूल रिट याचिकाकर्ता की ओर से दी गई रियायत को वास्तविक रियायत नहीं कहा जा सकता है।किसी भी मामले में मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और ऊपर बताए गए कारणों से और नकली और झूठे एस. एस. एल. सी. प्रमाणपत्र पेश करने के आरोप और कदाचार पर विचार करते हुए, जब अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा उन्हें सेवा से बर्खास्त करने के लिए एक सचेत निर्णय लिया गया था, तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था। उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग

करते हुए अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लगाए गए दंड के आदेश में हस्तक्षेप करने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है।

12. यह न्यायालय यह भी देखता है कि इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम राजेंद्र डी. हरमलकर (उपरोक्त) के उपरोक्त पूर्ववर्ती कानून को देखते हुए, विद्वत एकल पीठ द्वारा निर्भर आनुपातिकता का सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि अपीलकर्ता-निगम के साथ संबंधित पद के लिए उक्त रोजगार प्राप्त करने की शुरुआत में ही रिट याचिकाकर्ता ने एक जाली स्थानांतरण प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था और यह जांच अधिकारी द्वारा उचित जांच प्रक्रिया और गवाहों की जांच के बाद आए निष्कर्ष के अनुसार विवाद में नहीं है। जाँच रिपोर्ट के अवलोकन के बाद, इस न्यायालय ने कहा कि ऐसी कोई कमी या संदेह का लाभ मौजूद नहीं है जो प्रतिवादी के पक्ष में झुक सकता है क्योंकि वर्तमान मामले में समस्या बहुत ही मूल स्तर पर मौजूद है, जिसके आधार पर उपरोक्त पद के लिए रोजगार की मांग की गई थी, वह एक जाली दस्तावेज के आधार पर थी, और इस प्रकार, किसी भी शर्त के तहत, रिट याचिकाकर्ता की ओर से ऐसी कार्रवाई किसी भी उदार दृष्टिकोण की गारंटी नहीं दे सकती है या उससे दूर नहीं देखा जा सकता है।

13. इसके अलावा, एक नियोक्ता और एक कर्मचारी के बीच का संबंध विश्वास और आपसी सम्मान का होता है और ऐसे सभी संबंधों में, नियोक्ता अपने कर्मचारियों के काम करने पर इस तरह से भरोसा करते हैं कि उक्त काम सौंपे जाने पर उचित ईमानदारी और समर्पण के साथ किया जाएगा, जबकि कर्मचारी नियोक्ता पर इस तरह से भरोसा करता है कि नियोक्ता हमेशा कर्मचारी के सर्वोत्तम हितों और कल्याण को ध्यान में रखेगा; हालाँकि, जब इस तरह के रोजगार की मांग कुछ नकली दस्तावेज़/गलत निरूपण के आधार पर की गई है, तो ऐसे संबंध की नींव ही बिगड़ जाती है। इस प्रकार, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता की सेवा की अवधि, किसी भी तरह से, इस तथ्य को ठीक नहीं कर सकती है कि दस्तावेज़ सत्यापन के समय एक जाली स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया था ताकि विचाराधीन पद को सुरक्षित किया जा सके।

14. जाली दस्तावेज के बदले में रोजगार प्राप्त करने का कार्य रोजगार की जड़ तक जाता है क्योंकि जिस योग्यता के संबंध में यह उचित संदेह से परे साबित हो गया है कि वह एक जाली दस्तावेज है, उसे किसी भी स्तर पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। रिट याचिकाकर्ता को 17 वर्षों के लिए उसके बकाया का भुगतान किया गया था जो कि कर्तव्यों के निर्वहन के लिए वेतन था और उसके बाद अब एक बार यह स्थापित हो गया है कि विचाराधीन दस्तावेज़ पूरी तरह से उचित संदेह से परे जाली है, इतना कि संबंधित शैक्षणिक संस्थान के प्रमुख ने भी पूछताछ अधिकारी के सामने गवाही दी है और एक बयान दिया है कि विचाराधीन दस्तावेज़ पूरी तरह से जाली है और इसका कोई अस्तित्व नहीं है।

15. आनुपातिकता के सिद्धांत को तब लागू किया जा सकता है जब कई कदम/श्रेणीकरण होते हैं जिनके माध्यम से हम वैधता के मापदंड के कोष्ठक को देख सकते हैं, और इस प्रकार, इसे कानून के दायरे में काम करना पड़ता है जहां सजा की मात्रा को कम किया जा सकता है। 15.1. इस न्यायालय को इस बात में जरा भी संदेह नहीं है कि आनुपातिकता के सिद्धांत को उन मामलों में बार-बार लागू किया गया है जहां लंबे कार्यकाल से कर्मचारियों के लिए कठोर परिस्थितियां पैदा होती हैं, लेकिन साथ ही यह न्यायालय यह ध्यान देने के लिए विवश है कि आनुपातिकता के सिद्धांत को उन मामलों में लागू नहीं किया जा सकता है जहां रोजगार की जड़ ही एक जाली दस्तावेज पर आधारित है। व्यक्ति की पात्रता दांव पर है क्योंकि कर्मचारी ने धोखाधड़ी से ऐसा रोजगार प्राप्त किया है, और इसलिए, लंबे कार्यकाल की कोई भी राशि इस न्यायालय के मन में कोई सहानुभूति पैदा नहीं कर सकती है। धोखाधड़ी सीमा कानून के लिए भी एक स्पष्ट अपवाद है। एक बार जब रोजगार की नाभि को सीमा से काट दिया जाता है, तो दिए गए परिप्रेक्ष्य में, रोजगार का अस्तित्व, रोजगार के कम मापदंडों पर हो सकता है, उचित नहीं होगा।

16. इस प्रकार, उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में और वर्तमान मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स को देखते हुए, इस न्यायालय की राय है कि संबंधित अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा इस प्रकार लगाए गए आक्षेपित

दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

17. नतीजतन, दिनांकित 05.12.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए वर्तमान याचिका की अनुमति दी जाती है।

(राजेंद्र प्रकाश सोनी), जे. (डॉ. पुष्पेंद्र सिंह भाटी), जे.

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक सुनील कुमार किया गया है ।

अस्वीकरण - यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा मे समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा मे अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अँग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अँग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।